न्यायमूर्ति पी. सी. जैन, ए.सी.जे. और आई. एस. तिवाना के समक्ष

हरि नारायण (मृत) -अपीलकर्ता।

बनाम

सुभाष चंदर और अन्य -प्रतिवादी।

1977 के आदेश क्रमांक 306 से प्रथम अपील

8 फ़रवरी 1985

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम (1925 का XXXIX)—धारा 263—सीमा अधिनियम (1963 का XXXVI)—धारा 2(जे), 3, 6, 29(2) और अनुच्छेद 137—प्रोबेट को रद्द करने के लिए आवेदन—सीमा की अवधि —अनुच्छेद 137—चाहे ऐसे आवेदन पर लागू हो—आवेदक, प्रोबेट दिए जाने की तारीख पर नाबालिग हो—नाबालिग के मामले में ऐसे आवेदन के लिए सीमा का प्रारंभिक बिंदु।

माना गया कि जहां किसी विशेष या स्थानीय कानून (तत्काल मामले में भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम) में किसी अवधि या सीमा का प्रावधान नहीं किया गया है, वहां सीमा अधिनियम, 1963 के प्रावधान स्वचालित रूप से बाहर नहीं माने जाते हैं। इस संदर्भ में, अधिकतम चार अलग-अलग स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। हो सकता है कि संबंधित कानून ने कोई सीमा अवधि निर्धारित न की हो या उसने वही अवधि निर्धारित की हो जो अनुसूची में दी गई है या जब उसने कोई अवधि निर्धारित की हो, तो अनुसूची ने कोई अवधि निर्धारित नहीं की हो या अंततः, संबंधित कानून ने कोई अवधि निर्धारित की हो। एक अलग अवधि. जहां संबंधित कानून ने किसी सीमा अवधि का प्रावधान नहीं किया है, वहां अधिनियम के प्रावधान आम तौर पर लागू होंगे। धारा 29(2) अपने चरित्र में केवल पूरक है, जहां तक यह ऐसे मामलों में धारा 3 को लागू करने का प्रावधान करती है जो इसके दायरे में नहीं आते हैं। इस उपधारा का एकमात्र अन्य उद्देश्य किसी विशेष या स्थानीय कानून के तहत सीमा की अवधि की गणना करते समय धारा 4 से 24 को उसी तरह लागू करना है, जैसे वे इसी तरह की कार्यवाहियों के लिए सीमा की अवधि की गणना करते समय लागू होते हैं। सामान्य कानून जो परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित होगा। हालाँकि, इन सबका मतलब यह नहीं है कि जहां किसी स्थानीय या विशेष कानून ने किसी सीमा अवधि के लिए निर्धारित नहीं किया है, इस धारा 29 के प्रावधानों के विपरीत अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होंगे। यदि अधिनियम की धारा 3 के प्रावधानों और धारा 2 के नए जोड़े गए खंड (जे) को एक साथ पढ़ा जाए तो स्थिति और स्पष्ट हो जाती है। खंड (जे) में कहा गया है कि 'सीमा की अवधि' का अर्थ अनुसूची द्वारा किसी भी मुकदमे, अपील या आवेदन के लिए निर्धारित सीमा की अवधि है और 'निर्धारित अवधि' का अर्थ इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार गणना की गई सीमा की अवधि है। धारा 3 कहती है कि धारा 4 से 24 में निहित प्रावधानों के अधीन, स्थापित प्रत्येक मुकदमा, अपील की गई, और निर्धारित अवधि के बाद किए गए आवेदन को खारिज कर दिया जाएगा, हालांकि बचाव के रूप में सीमा स्थापित नहीं की गई है। इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि प्रोबेट को रद्द करने के लिए एक आवेदन पर विचार करते समय जिला न्यायाधीश एक सिविल कोर्ट के रूप में कार्य करता है और अधिनियम के अनुच्छेद 137 के प्रावधान स्पष्ट रूप से स्थिति को नियंत्रित करते हैं और आवेदक केवल तीन दिनों के भीतर आवेदन दायर कर सकता है। उस तारीख से वर्ष जब उसे अर्जित प्रोबेट को रद्द करने के लिए आवेदन करने का अधिकार था। यह अधिकार स्पष्ट रूप से प्रोबेट दिए जाने के समय से ही प्राप्त होता है। चूँकि इस सीमा अवधि के शुरुआती समय में, आवेदक अपने अल्पसंख्यक होने के कारण कानूनी विकलांगता के अधीन था, वह, अधिनियम की धारा 6 के अनुसार, निश्चित रूप से उसी अवधि के भीतर प्रश्नगत आवेदन कर सकता था। उसकी विकलांगता समाप्त होने के बाद यानी उसके वयस्क होने पर। यह कार्यवाही शुरू करने के लिए उसके लिए समय की बाहरी सीमा है और यदि आवेदन वास्तव में तीन साल की समाप्ति के बाद दायर किया जाता है जब आवेदक वयस्क हो जाता है, तो उस पर समय की रोक लग जाएगी।

(अनुच्छेद 3)

(इस मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए इस मामले को 15 फरवरी, 1982 को माननीय श्री न्यायमूर्ति आई.एस. तिवाना द्वारा एक बड़ी पीठ को भेजा गया था।

माननीय कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश श्री प्रेम चंद जैन और माननीय श्री न्यायमूर्ति आई.एस. तिवाना की खंडपीठ ने अंततः 8 फरवरी, 1985 को मामले का फैसला किया।

श्री वेद प्रकाश अग्रवाल, जिला न्यायाधीश, अंबाला के न्यायालय के 9 जून, 1977 के आदेश से पहली अपील, जिसमें सुभाष चंद द्वारा किए गए आवेदन को स्वीकार किया गया और 4 तारीख को हरि नारायण प्रतिवादी के पक्ष में दिए गए प्रोबेट को रद्द कर दिया गया। नवंबर, 1969, पार्टियों को अपना खर्च स्वयं वहन करने के लिए छोड़ दिया गया।

अपीलकर्ता के वकील, मनमोहन सिंह लिब्रहान।

प्रतिवादी की ओर से आर. सी. सेतिया, अधिवक्ता।

निर्णय

न्यायमूर्ति आई. एस. तिवाना

1) प्रोबेट को रद्द करने के लिए भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 263 के तहत आवेदन दाखिल करने की सीमा अवधि क्या है, यह सटीक प्रश्न है जिसे इस डिवीजन बेंच द्वारा एक संदर्भ पर तय करने की आवश्यकता है। प्रतिवादी-आवेदक के विद्वान वकील द्वारा कानून का आश्चर्यजनक प्रस्ताव सामने रखा गया. अश्विनी कुमार चक्रवर्ती और अन्य बनाम सुखहरण चक्रवर्ती और अन्य एआईआर 1931 कैल में कुछ टिप्पणियों के आधार पर कोई सीमा अवधि इस तरह के आवेदन और इसके रखरखाव को नियंत्रित नहीं करती है। 717 वर्तमान संदर्भ के निर्माण की ओर ले जाता है। निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट रूप से विवाद को उजागर करते हैं।
2) हरि नारायण अपीलकर्ता (मृत्यु के बाद से और अब उनके कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया है) 4 नवंबर, 1969 को जिला न्यायाधीश, अंबाला की अदालत से अपने पिता पियारा लाई की संपत्ति के आधार पर प्रोबेट प्राप्त करने में सफल रहे। वसीयत दिनांक 25 जुलाई, 1962। इस प्रोबेट को पियारा लाई की पूर्व मृत बेटी के बेटे, प्रतिवादी सुभाष चंदर द्वारा दायर 12 मार्च, 1974 के एक आवेदन पर उक्त न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया है। इस निरसन के लिए दलील दी गई थी कि 4 नवंबर, 1969 को प्रोबेट दिए जाने के समय, वह नाबालिग था और उन कार्यवाहियों के दौरान, न तो किसी अभिभावक द्वारा उसका प्रतिनिधित्व किया गया था, न ही उस पर कोई उद्धरण दिया गया था या उस पर प्रभाव डाला गया था। . निचली अदालत ने इन दलीलों को स्वीकार कर लिया है और उसी के परिणामस्वरूप, प्रोबेट को रद्द करने की अपील के तहत आदेश पारित किया है। पूरे अपीलकर्ता का मामला यह था कि प्रतिवादी के पिता पर उचित उद्धरण प्रभाव डाला गया था। हालाँकि, उन्होंने प्रासंगिक समय पर प्रतिवादी के अल्पसंख्यक होने के तथ्य पर विवाद नहीं किया। उनकी ओर से आगे दलील दी गई कि प्रतिवादी का 12 मार्च, 1974 का आवेदन परिसीमा अवधि के भीतर नहीं भरा गया था।' निचली अदालत ने पक्षों के साक्ष्य दर्ज करने के बाद आवेदन को मुख्य रूप से इस कारण से सीमा के भीतर माना कि 4 नवंबर, 1969 को, यानी जिस तारीख को प्रोबेट प्रदान किया गया था, प्रतिवादी नाबालिग था और उसने ज्ञान प्राप्त किया था फरवरी, 1974 में ही इसके बारे में और इस प्रकार, 12 मार्च, 1974 को उनके आवेदन पर किसी भी सीमा अवधि की रोक नहीं लगाई गई थी।
3) अपीलकर्ता के विद्वान वकील, श्री लिब्रहान, कुछ हद तक बल के साथ कहते हैं कि सीमा अधिनियम, 1963 (संक्षिप्तता के लिए अधिनियम) के अनुच्छेद 137 स्पष्ट रूप से तत्काल मामले के तथ्यों को कवर करता है और प्रकाश में है, उसमें निर्धारित अवधि के दौरान, प्रतिवादी द्वारा अपने वयस्क होने की तारीख से अधिकतम 3 वर्ष की अवधि के भीतर आवेदन दायर किया जा सकता था, जिसे उसने 28 मार्च, 1970 को स्वीकार किया था। प्रतिवादी के लिए विद्वान वकील का रुख, जैसा कि पहले ही संकेत दिया गया है, प्रोबेट को रद्द करने के लिए ऐसा आवेदन दाखिल करने के लिए कोई सीमा अवधि निर्धारित नहीं है।

अपने इस तर्क को कायम रखने के लिए उन्होंने विद्वान वकील ने अधिनियम के लागू होने से पहले दिए गए कुछ निर्णयों का उल्लेख किया है, लेकिन हमें इन निर्णयों का उल्लेख करना पूरी तरह से अनावश्यक लगता है, क्योंकि हमारी दृढ़ता से राय है कि आधिकारिक घोषणा से विवाद व्यावहारिक रूप से हल हो जाता है। केरल राज्य विद्युत बोर्ड बनाम टी. पी. कुन्हालियम्मा एआईआर 1977 एस.सी. 282 में सर्वोच्च न्यायालय के आधिपत्य के संबंध में। उस मामले में सवाल उठाया गया था कि क्या अधिनियम का अवशिष्ट अनुच्छेद 137 धारा 10 और 16 के तहत दायर कार्यवाही पर लागू होगा। 5) टेलीग्राफ अधिनियम, 1885, विद्युत अधिनियम 1910 की धारा 51 के साथ पढ़ें, मुआवजे के दावे से संबंधित। प्रश्न का उत्तर देते समय, अधिनियम के प्रावधानों के गहन विश्लेषण के बाद, उनके आधिपत्य ने कहा:
"हम जिस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं वह यह है कि 1963 सीमा अधिनियम का अनुच्छेद 137 किसी भी अधिनियम के तहत सिविल अदालत में दायर किसी भी याचिका या आवेदन पर लागू होगा। संबंध में हम अथानी नगर परिषद मामले (ए.आई.आर. 1969, एस.सी. 1335) (सुप्रा) में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न हैं और मानते हैं कि अनुच्छेद 137 का। द. 1963 परिसीमा अधिनियम सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा या उसके अंतर्गत विचारित आवेदन तक ही सीमित नहीं है। वर्तमान मामले में याचिका एक न्यायालय के रूप में जिला न्यायाधीश के पास थी। यह याचिका टेलीग्राफ अधिनियम द्वारा न्यायिक निर्णय के लिए विचाराधीन याचिका थी। याचिका 1963 अधिनियम के अनुच्छेद 137 के दायरे में आने वाला एक आवेदन है।"

अंतिम न्यायालय के इस फैसले का सामना करते हुए, प्रतिवादी के विद्वान वकील, श्री सेतिया ने यह तर्क देने की मांग की कि मौजूदा मामले में विशेष या स्थानीय कानून, यानी, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, एक अलग अवधि के लिए प्रदान नहीं करता है। अधिनियम की अनुसूची में जो प्रावधान किया गया है, उससे अधिक की सीमा इन कार्यवाहियों पर लागू नहीं हो सकती। सबसे पहले, हमें उपरोक्त उद्धृत उदाहरण के आलोक में इस तर्क की किसी भी गहराई से जांच करने की कोई गुंजाइश नहीं है और दूसरी बात, हम इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सकते हैं कि जहां एक विशेष या स्थानीय कानून, जैसा कि मौजूदा मामले में, प्रदान नहीं किया गया है। किसी भी सीमा अवधि के लिए, अधिनियम के प्रावधान स्वतः ही बाहर हो जाते हैं। इस संदर्भ में, अधिकतम चार अलग-अलग स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। हो सकता है कि संबंधित कानून ने कोई सीमा अवधि निर्धारित न की हो या उसने वही अवधि निर्धारित की हो जो अनुसूची में दी गई है या जब उसने कोई अवधि निर्धारित की हो, तो अनुसूची ने कोई अवधि निर्धारित नहीं की हो या अंत में, संबंधित कानून ने एक अलग अवधि निर्धारित की हो अवधि। जहां संबंधित कानून ने किसी सीमा अवधि का प्रावधान नहीं किया है, वहां अधिनियम के प्रावधान आम तौर पर लागू होंगे। धारा 29(2) अपने चरित्र में केवल पूरक है, जहां तक यह ऐसे मामलों में धारा 3 को लागू करने का प्रावधान करती है जो इसके दायरे में नहीं आते हैं। (कौशल्या रानी बनाम गोपाल सिंह एआईआर 1964 एस.सी. 260 देखें)। इस उप-धारा का एकमात्र अन्य उद्देश्य किसी विशेष या स्थानीय कानून के तहत सीमा की अवधि की गणना करते समय धारा 4 से 24 को उसी तरह लागू करना है, जैसे वे इसी तरह की कार्यवाहियों के लिए सीमा की अवधि की गणना करते समय लागू होते हैं। सामान्य कानून जो सीमा अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित होगा (देखें ग्राम पंचायत, मुरथल बनाम भूमि अधिग्रहण कलेक्टर एआईआर 1972 पीबी 36। हालांकि, इन सबका मतलब यह नहीं है कि जहां स्थानीय या विशेष कानून है परिसीमा अवधि के लिए निर्धारित नहीं होने पर, इस धारा 29 के प्रावधानों के विपरीत अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होंगे। धारा 3 के प्रावधानों और धारा 2 के नए जोड़े गए खंड (जे) से स्थिति और स्पष्ट हो जाती है। अधिनियम को एक साथ पढ़ा जाता है। खंड (जे) में कहा गया है कि "अनुसूची द्वारा किसी भी मुकदमे, अपील या आवेदन के लिए निर्धारित सीमा की अवधि, और 'निर्धारित अवधि' का अर्थ इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार गणना की गई सीमा की अवधि है। विधि आयोग ने अपनी तीसरी रिपोर्ट (पैरा 22) में इस संबंध में क़ानून में इस खंड को जोड़ने की सिफारिश करते हुए निम्नानुसार कहा है:

"धारा 4 में होने वाली अभिव्यक्ति 'निर्धारित अवधि' का अलग-अलग न्यायालयों द्वारा अलग-अलग अर्थ लगाया गया है। कुछ न्यायालयों का विचार है कि इसका मतलब केवल अधिनियम की अनुसूची में निर्धारित सीमा की अवधि है और यह उन धाराओं के तहत सीमा की अवधि के विस्तार को आकर्षित नहीं करता है जो स्पष्ट रूप से सही नहीं है। जैसा कि अभिव्यक्ति अन्य धाराओं में भी होती है, यह बेहतर होगा यदि 'निर्धारित अवधि' के लिए एक नई परिभाषा खंड इस आशय से जोड़ा जाए कि इसका मतलब अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार गणना की गई सीमा की अवधि है।"

धारा 3 में कहा गया है कि धारा 4 से 24 (समावेशी) में निहित प्रावधानों के अधीन, स्थापित प्रत्येक मुकदमा, अपील की गई, और निर्धारित अवधि के बाद किया गया आवेदन खारिज कर दिया जाएगा, हालांकि बचाव के रूप में सीमा स्थापित नहीं की गई है। इस प्रकार हमारा दृढ़ मत है कि पक्षों के बीच इस तथ्य को लेकर कोई विवाद नहीं है कि जिला न्यायाधीश प्रश्नगत आवेदन से निपटते समय एक सिविल न्यायालय के रूप में कार्य कर रहे थे - कि अधिनियम के अनुच्छेद 137 के प्रावधान स्पष्ट रूप से नियंत्रित करते हैं। स्थिति और प्रतिवादी उस तारीख से केवल तीन साल के भीतर आवेदन दाखिल कर सकता है जब उसे अर्जित प्रोबेट को रद्द करने के लिए आवेदन करने का अधिकार हो। अपीलकर्ता के पक्ष में प्रोबेट दिए जाने के समय से ही यह अधिकार स्पष्ट रूप से उसे प्राप्त हो गया था। चूंकि इस सीमा अवधि के शुरुआती समय में, प्रतिवादी अपनी अल्पसंख्यकता के कारण कानूनी विकलांगता के तहत था, वह अधिनियम की धारा 6 के संदर्भ में निश्चित रूप से उसी अवधि के भीतर, यानी 3 के भीतर प्रश्न में आवेदन कर सकता था। उनकी विकलांगता समाप्त होने के वर्षों बाद, यानी 28 मार्च, 1970 को उनके वयस्क होने पर। कानून के इस प्रावधान के आलोक में, वह 27 मार्च, 1973 तक आवेदन दाखिल कर सकते थे। यह समय की बाहरी सीमा थी उसे आरंभ करना; वर्तमान कार्यवाही, लेकिन उसने वास्तव में आवेदन दायर किया; 12 मार्च, 1974। प्रोबेट को रद्द करने के लिए उसके पक्ष में अधिकार के संचय के बारे में आवेदक की ओर से अज्ञानता, यदि इसे तर्क के लिए स्वीकार किया जाता है, तो परिसीमा के शुरुआती बिंदु को स्थगित नहीं किया जा सकता है। उसे यह आवेदन उस कानूनी विकलांगता की समाप्ति से 3 साल के भीतर करना था, जिससे वह आवेदन करने का अधिकार अर्जित करने की तिथि पर पीड़ित था। इस प्रकार, उनका आवेदन, स्पष्ट रूप से परिसीमा द्वारा वर्जित था और अनिवार्य रूप से अधिनियम की धारा 3 के तहत खारिज किया जाना था।

4) उपरोक्त चर्चाओं के आलोक में, हम अपील के तहत आदेश को रद्द करते हुए, प्रतिवादी के आवेदन को समय से बाधित मानते हुए खारिज कर देते हैं, लेकिन लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं देते हैं।

एन.के.एस.

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वहअपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

अरुणिमा चौहान

प्रशिक्षु न्यशियक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

पंचकुला, हरियाणा